भक्तरत्न
पूज्यश्री
सोभाग
विशेषांक

वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

JULY - 2026

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्‌श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

जिसके हृदयमें एकमात्र कृपालुदेव बसते थे ऐसे
पूज्य श्री सौभाग्यभाईके समाधि दिन
(ज्येष्ठ वदि १०) पर उनके चरणोंमें कोटीकोटी वंदन

'श्री सुभाग्य, स्वमूर्तिरूप श्री सुभाग्य'

(–श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक–२९३)

'श्री सुभाग्य, स्वमूर्तिरूप श्री सुभाग्य' क्या संबोधन किया है!! 'स्वमूर्ति' अभिन्नभाव हुआ। क्या हुआ? भेदभाव नहीं रहा। मेरे आत्माकी मूर्ति हैं चैतन्यमूर्ति!! क्या शब्द निकले हैं!! सौभाग्यभाई होनेका मन हो जाये ऐसा है!! देखो कैसा शब्दप्रयोग किया है! 'श्री सुभाग्य' दूसरीबार लिख दिया है कि 'स्वमूर्तिरूप श्री सुभाग्य'!

– सौम्यमूर्ति भाईश्री शशीभाई

(श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक–२९३ के प्रवचनसे)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्–२५५२, अंक–३४३, वर्ष–२८, जुलाई–२०२६

कहानरत्न किरणें!!

– अध्यात्म युगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

('परमागमसार'में से साभार उद्धृत)

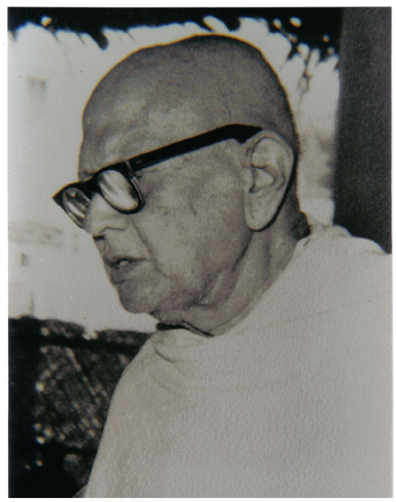

आत्माको सदा ही ऊर्ध्व अर्थात् मुख्य रखना चाहिए। चाहे जैसा प्रसंग आए तो भी द्रव्य–स्वभावको मुख्य रखना। शुभाशुभ–परिणाम भले ही आए पर नित्य द्रव्यस्वभावका ध्येय रखना। आत्माको मुख्य रखने पर जो दशा होती है वह निर्मल–दशा साधन कहलाती है और उसका साध्य केवलज्ञान करना है और उसका ध्येय पूर्ण आत्मा है। कषायकी मन्दता अथवा क्षयोपशम ज्ञानके विकासकी मुख्यता होगी तो दृष्टि संयोग पर जाएगी। आत्माकी ऊर्ध्वताकी रुचि और जिज्ञासा हो तो उसका प्रयास हुए बिना रहे ही नहीं। जिसको आत्मानुभवके पहले भी यथार्थ जिज्ञासा हो, उसीको अव्यक्तरूपसे आत्माकी ऊर्ध्वता है। यहाँ अभी आत्मा जाननेमें तो आया नहीं, पर उसकी ऊर्ध्वता अव्यक्तरूपसे रहती है, और वह अनुभवमें आए तब व्यक्त प्रकट ऊर्ध्वता होती है। ३९९

*

क्षणभंगुर संयोगके लक्ष्यसे होनेवाले परिणाम क्षणमें पलट जायेंगे, पर जब शाश्वत रहनेवाले आत्माका लक्ष्य करे तब परिणाम शुद्ध होगें, और ये शुद्ध परिणाम शुद्ध रूपसे शाश्वत बने रहेंगे। आनन्दस्वरूप–ज्ञायकस्वरूप–भगवान् आत्माका अद्‌भुत, आश्चर्यकारी और गहन स्वभाव है। इस स्वभावका लक्ष्य करना – यही इस दुर्लभ भवकी सार्थकता है। ४००

*

एक आत्मा ही सार है। व्यवहार–रत्नत्रयका विकल्प सार नहीं, एक समयकी पर्याय भी सार नहीं है। सारका सार तो एक आत्मा ही है। चौदह ब्रह्माण्डमें सारका सार एक आत्मा ही है, इसके सिवाय अन्य सब कुछ निस्सार है। पैसा, लक्ष्मी, चक्रवर्तीपद, इन्द्रपद ये सभी निस्सार हैं। एक चैतन्य बादशाह ही जगतमें सार है। अनाकुल आनन्दका

कन्द, ध्रुव, सामान्य वस्तु – वह एक ही सार है। चक्रवर्तीपद या इन्द्रका इन्द्रासन – वह भी सार नहीं है। ४०१

*

पर्यायके बगलमें ही भगवान पूर्णानन्दका नाथ बिराजमान है – वह सर्वोत्कृष्ट चीज़ है, आश्चर्यकारी चीज़ है। स्वयंका सर्वोत्कृष्ट भगवान आत्मा सिद्धिकी पर्यायसे भी सर्वोत्कृष्ट है; क्योंकि सिद्धदशा तो एक समयकी पर्याय है और आत्मा तो अनन्त सिद्ध-पर्याय जिसमेंसे प्रकट होती हैं – ऐसा द्रव्य है, वह सर्वोत्कृष्ट है। अपरिमित, अमर्यादित, ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त शक्तियोंका पिण्ड सर्वोत्कृष्ट आत्मा है। सर्वोत्कृष्ट चीज़को जो दृष्टि स्वीकार करे – वह सम्यग्दृष्टि है। पर्याय और गुणभेदको स्वीकार करनेवाली दृष्टि सम्यक् नहीं। ४०२

*

जो छूट जाती है वह तो तुच्छ वस्तु है, उसे छोड़ते हुए तुझे डर कैसे लगता है? शरीर छूटने पर या वाणी बन्द होने पर तुझे डर कैसा लगता है? ये तो तुच्छ वस्तुयें हैं, उन्हें छोड़ते हुए तुझे डर कैसे लगता है? जो आश्चर्यकारी सर्वोत्कृष्ट प्रभु है उसका आश्रय ले तो तुझे आनन्द झरेगा। चिन्तामणि रत्न कहो, कल्पवृक्ष कहो, कामधेनु कहो – वह आत्मा स्वयं ही है। जब-जब उसका आश्रय करेगा, तब तब आनन्दका आस्वादन होगा। ४०३

*

संयोगका लक्ष्य छोड़ दे और निर्विकल्प एकरूप वस्तु है उसका आश्रय ले। वर्तमान (पर्याय)में त्रिकाली-ज्ञायक सो मैं हूँ – ऐसा आश्रय कर। गुण-गुणीके भेदका भी लक्ष्य छोड़कर एकरूप गुणीकी दृष्टि कर – तुझे समता होगी – आनन्द मिलेगा – दुःखका नाश होगा। एक चैतन्य वस्तु ध्रुव है, उसमें दृष्टि देनेसे तुझे मुक्तिका मार्ग प्रकट होगा। अभेद वस्तु कि जिसमें गुण-गुणीके भेदका भी अभाव है वहाँ जा। तुझे धर्म होगा, रागसे छूटनेका पन्थ हाथ आएगा, विकार और दुःखसे छूटनेका पन्थ तेरे हाथ लगेगा। ४०४

*

स्त्री-पुत्र-पैसा आदिमें रचे-पचे रहना – यह तो सर्पका बड़ा धर है, जहरीला स्वाद है। पर शुभ-भावमें आना – यह भी संसार है। जो परम पुरुषार्थी महाज्ञानी अन्दर खोये वे फिर बाहर नहीं आए। ४०५

*

सम्यग्दृष्टिको तो बाहरके विकल्पोंमें आना रुचता ही नहीं। यहाँ तो विशेष दशावालोंकी बात ली है कि महाज्ञानी अन्तरमें जम गये हैं। अहो! वह धन्य दिवस कब आए कि मुझे बाहर आना ही न पड़े – ज्ञानीकी ऐसी भावना होती है। समकितीको ऐसी दशाकी भावना होती है; पर मैं दुनियाको समझाऊं आदि भावना नहीं होती। ४०६

*

स्त्री-पुत्र-पैसा-आबरू आदिमें या रागकी मन्दतामें सुख है – जो ऐसा मानते हैं उन्होंने जीवको मार डाला है; क्योंकि उनका अभिप्राय ऐसा है कि मैं आनन्दस्वरूप नहीं, पर मुझे मेरा आनन्द बाहरसे मिलता है। चैतन्यपरिणतिसे जीना

– वही जीवका जीवन है, अन्य सब तो चलते मुर्दे हैं। पामर पर वस्तुमें दृष्टि लम्बाकर सुख मानते हैं, पर 'प्रभु तूँ दुःखी है'। जहाँ आनन्दका धाम–आनन्दका ढ़ेर है – उसे जिसने प्रतीति और ज्ञानमें लिया, उसे ज्ञान और आनंदरूप परिणति होती है – यही वास्तविक जीवन है। ४०७

*

बाहरमें उत्साहित न हो, भाई! यब सब तो क्षणभंगुर है और अनन्त बार मिला है, बाहरमें जो सर्वस्व माना है उसे पलट कर ऐसा मान कि अनन्त गुणका पिण्ड आत्मा – यही मेरा सर्वस्व है। भगवान पूर्णानन्दका नाथ–चैतन्यकी जगमग ज्योति है, उस रूप परिणमन हो – वही जीवका जीवन है। जो पुण्यपाप व उसके फलमें सर्वस्व मानता है, वह असाध्य–बेसुध हो गया है। अतः अब बाहरमें माने गए सर्वस्वको पलटकर, स्वमें सर्वस्व मान। ४०८

*

प्रभु! तेरी चीज़ तो निर्मल है, जिससे तुझे प्रभु! निर्मल परिणति मिलेग। (राग रूप मलिन परिणति नहीं मिलती)। राग मेरा है व उससे मुझे लाभ होगा – ऐसी पकड़ है; पर चैतन्यस्वरूप आत्माकी पकड़ करे तो संसार रूपी मगरमच्छके मुखमेंसे छूट सके। प्रभु! तुझमें शक्ति है, तूँ परसे भिन्न हो सकता है। मगरमच्छ तो कदाचित् न भी छोड़े, पर तूँ परसे भेदज्ञानकर संसार रूपी मगरमच्छके मुखमेंसे छूट सके – ऐसा है। अतः परसे भिन्न होकर अपनी आत्मको पकड़। ४०९

*

रागी हूँ या रागी नहीं हूँ, वस्तु तो ऐसे नयोंसे अतिक्रान्त है। व्रत–तपादिका राग– यह तो स्थूल राग है, पर रागी हूँ या रागी नहीं हूँ, ऐसे सूक्ष्म रागसे भी शुद्ध चैतन्यतत्त्वके अन्तरमें नहीं जा सकते। वस्तु शुद्ध चैतन्यस्वरूप होनेसे शुद्ध निर्मल परिणाम द्वारा ही पकड़ी जा सकती है, याने कि अन्दर जा सकते हैं। 'मैं शुद्ध हूँ'– ऐसे विकल्पसे भी वस्तु हाथ आने वाली नहीं। ४१०

*

पहले रागकी मन्दता करुँ – ऐसा रहने दे व एकदम पुरुषार्थ कर। विकल्पके वायदे रहने दे व एकदम पुरुषार्थ कर। जैसे कोई कुएँमें खड़ा गिरता है और तलका अंश ले आता है – वैसे ही एकदम पुरुषार्थ करके, ध्रुव जिसका तल है वहाँ गहरा उतर जा। त्रिकाल ज्ञायक–भाव आनन्दका नाथ प्रभु है! वहाँ गहरा उतर जा। पर्याय तो ऊपर–ऊपर है, द्रव्यमें समाविष्ट नहीं हुयी है। पर्यायका लक्ष्य द्रव्यमें ले जा। पर्याय तो द्रव्यमें नहीं जाती, पर पर्यायका लक्ष्य द्रव्यमें ले जा। ४११

*

कहीं रुकना नहीं। जब–तक विकल्पकी कुछ भी खटक रहा करेगी तब–तक अन्दर नहीं जा सकेगा। अभी जवानी है अतः कमाई कर लेंवे – यह रहने दे, बापू ! सर पर मौतके नगाड़ बज रहे हैं। बादमें करूँगा–बादमें करूँगा – ऐसा न कर। अन्दरमें 'यह करूँ–यह करूँ' के वायदेका कोई भी विकल्प रहे तो अन्दर नहीं जा पाएगा। ४१२

*

द्रव्य सदा निर्लेप है। किसको? – कि जो उसे जाने उसको। संयोग और राग परसे दृष्टि हटाकर, एक समयका जिसका अस्तित्व है उसका

लक्ष्य छोड़कर, भगवान जो निर्लेप है – उसकी दृष्टि करे तो समयग्दर्शन हो। ४१३

*

यह आत्मा प्रत्यक्ष है। जैसे सामने कोई चीज़ प्रत्यक्ष होती है न! वैसे ही यह आत्मा प्रत्यक्ष है। उसे देख – ऐसा आचार्य देव कहते हैं। यह शरीर है, कुटुम्ब है, धन, मकान, वैभव है – ऐसा तूँ देखता है, पर ये सब तो तेरेसे अत्यन्त भिन्न पर द्रव्य हैं; उनसे भिन्न यह आत्मा स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है। उसे देखे तो तेरा मोह तुरन्त नष्ट हो जायेगा। ४१४

*

प्रश्न :– सम्यग्दर्शन होनेके पूर्व अनुमानज्ञानसे आत्मा जैसा है वैसा जाना जा सकता है न?

उत्तर :– पहले अनुमानज्ञानकी सहायतासे जाने, पर स्वानुभवमें ही आत्मा जैसा है – वैसा ज्ञात होता है।

प्रश्न :– अनुमानज्ञानसे आत्मा जाननेवालेकी पर्यायमें भूल है या आत्मा जाननेमें भूल है?

उत्तर :– अनुमानज्ञान वालोंने आत्माको यथार्थ जाना ही नहीं। आत्माको जाननेमें ही भूल है। स्वानुभव प्रत्यक्षसे ही आत्मा जैसा है वैसा जाननेमें आता है। अनुमानसे तो शास्त्र व सर्वज्ञ कहते – वैसा आत्मा जानते हैं, परन्तु यथार्थरूपसे तो स्वानुभवमें ही ज्ञात होता है। स्वानुभवसे जाने बिना आत्मा यथार्थरूपसे जाननेमें नहीं आता। ४१५

*

आहा हा! आनन्दका नाथ परमात्म–स्वरूप आत्मा – यह महा गम्भीर वस्तु है। लोगोंको अपरिचितसा लगता है। जैसे अपरिचित देशमें जायें तो अपरिचितसा अपरिचितसा लगता है। पर बापू ! ये तो भगवानके देशकी बाते हैं, जो इन्हें रुचिसे सुने तो उसके निज–घरकी ही बातें हैं। अपरिचित कुछ नहीं, अपना ही है। अनन्त–अनन्त जन्म–मरणके नाशकी बातें हैं। इसके लिए अभ्यास चाहिए, निवृति चाहिए। लौकिक पढ़ाईमें भी दस–पन्द्रह वर्ष लगाते हैं, तो इसका भी थोड़ा समय निकाल कर अभ्यास करना चाहिए। यह वस्तु गम्भीर है। निश्चय किस प्रकार है, व्यवहार किस प्रकार है, आदि जानना चाहिए। ये तो सर्वज्ञकी जानी और कही हुई बातें हैं, इन्हें रुचिपूर्वक अन्तरमें उतर कर अनुभव करे – तो इसकी महिमा कैसी और कितनी है! सो खयालमें आए। ४१६

*

आत्मा हर प्रकारके संयोगमें भी निज–शान्ति प्रकट कर सकता है। अपनी शान्ति प्रकट करनेमें जगतका कोई बाह्य पदार्थ विध्न डालनेमें समर्थ नहीं। चाहें जैसे तीव्र प्रतिकूलताके प्रसंग आ पड़े – पुत्र मर जाए, पुत्री विधवा हो जाए, जंगलमें अकेला पड़ गया हो और हैजा आदि रोग हो गये हों, क्षुधा–तृषाकी तीव्र वेदना हो या सिंह–बाध दहाड़ता हुआ खा जानेके लिये आया हो, इत्यादि जैसे तीव्र प्रतिकूल प्रसंगो में भी उन संयोगोंका लक्ष्य छोड़कर, अन्तरमें आत्मा अपनी शांति प्रकट करनेमें समर्थ है। बाहरमें वर्तती प्रतिकूलता अन्दरमें आत्मशान्तिको नहीं रोक सकती। शास्त्रमें तो कहा है कि नरकके एक क्षणकी भी पीड़ा ऐसी है कि उसे कोटि जीभोंसे कोटि वर्षो तक कहें तो भी

नहीं कही जा सकती – नरककी पीड़ा ऐसी प्रचंड है, फिर भी इस संयोग और पीड़ाका लक्ष्य छोड़ दे तो आत्मा निज–शांति प्रकट कर सकता है। भाई! तेरा तत्त्व सदा विद्यमान है, उसमें लक्ष्य करनेसे निज–शांति प्रकट की जा सकती है। ४१७

*

जाननेवाला ....जाननेवाला....जाननेवाला – वह मात्र वर्तमान जितना ही सत् नहीं है। ज्ञायक तत्त्व तो अपना त्रिकाली सत्त्व बता रहा है। ज्ञायककी प्रसिद्ध वर्तमान जितनी ही नहीं, बल्कि वर्तमान है सो तो त्रिकालीको ही प्रसिद्ध कर रहा है। ज्ञायककी वर्तमान अस्ति तो त्रिकाली अस्ति–सत्को बतलाती है। ४१८

*

प्रश्न :– मिथ्यात्व–आस्रवभावको तोड़नेका वज्रदण्ड है। उसका आश्रय लेनेसे मिथ्यात्व–आस्रव भाव टूटते हैं। प्रथममें प्रथम कर्तव्य रागसे भिन्न होकर ज्ञायकभावकी दृष्टि करना – यह है। यह कार्य किए बिना व्रतादि सब थोथे हैं। ४१९

*

भाई ! तूँ संसारके प्रसंगोको याद किया करता है, पर तूँ स्वयं पूर्णानंदका नाथ अनन्त गुणरत्नोंसे भरा हुआ महाप्रभु सदा ऐसाका ऐसा ही रहता है – इसे याद कर न!! स्त्री–पुत्र आदिको इस प्रकार प्रसन्न रखा था और इस प्रकार भोगविलासमें मौज–मजे मानें थे – ऐसे याद करता है – स्मरण करता है, पर ये सब तो तेरे दुःखके कारण हैं। सुखका कारण तो तेरा स्वभाव है। वह तो सदा ही शुद्ध रूपसे, ऐसाका ऐसा ही विद्यमान है। चार गतियोंमें भ्रमण करने पर भी तेरा स्वभाव सुखसागरसे भरा हुआ ऐसाका ऐसा ही रहा है – उसे याद कर न! उसका स्मरण कर न! यह एक ही तेरी सुख–शांतिका कारण होगा। ४२०

*

भाई! तूँ सावधान रहना। मुझे आता है – ऐसे बुद्धिबलके अहम्‌मे अभिमानके रास्ते न चले जाना। विभावका रास्ता तो अनादिसे पकड़ा हुआ ही है। ग्यारह अंगके ज्ञानमें – धारणामें तो सब कुछ आया था, परन्तु शास्त्रके धारणा–ज्ञानकी अधिकता की; और आत्माकी अधिकता नहीं की। धारणा–ज्ञान आदिके अभिमानसे बचानेके लिए गुरू चाहिए, सर पर टोकने वाले गुरू चाहिए। ४२१

*

प्रभु! क्षयोपशमके अभिमानसे दूर रहना ही अच्छा है। बाह्य प्रसिद्धिके भावसे व बाह्य प्रसिद्धिके प्रसंगोंसे दूर–भागनेमें ही आत्मार्थीको लाभ है। क्षयोपशमज्ञानके कारण लोग मान–सन्मान–सत्कार करते हैं, पर आत्मार्थीको इन प्रसंगोसे दूर–भागना ही योग्य है। ये मान–सन्मानके प्रसंग निस्सार हैं , तनिक भी हितकर नहीं। एक आत्मस्वभाव ही सारभूत और हितकारी है। अतः 'क्षयोपशम' के अभिमानसे दूर–भागकर आत्म–सम्मुखता करना ही योग्य है । ४२२

*

जड़–द्रव्येन्द्रिय, खंड–खंड ज्ञानरूप भावेन्द्रिय और पांच इन्द्रियोंके विषयभूत पदार्थ, इन तीनोंको ज्ञायकके अवलंबन द्वारा भिन्न करना – यही इन्द्रियोंको जीतना कहलाता है। तीनोंका लक्ष्य छोड़कर निज आत्मामें एकाग्रता करना – यही निश्चय स्तुति है। ४२३

संगका विवेक

बहिनश्रीके वचनामृत, बोल–२२९ पर प्रवचन

दि. २५–११–१९८७, प्रवचन क्र.–१८४

- सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

(गतांकसे आगे...)

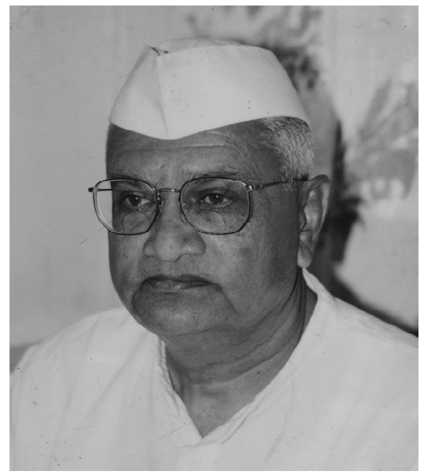

प्रश्न :– (कोई ज्ञानीका) संग करता हो साथ–साथ किसी बुद्धिवाले–क्षयोपशमवालेका संग भी हो जाये साथ–साथ अन्य किसी विषयको लेकर तो उसमें फिसलनेका कारण बन जाता है क्या?

समाधान :– वह तो विपरीत अभिनिवेश सहित ही सारे कार्य करेगा... सिद्धांत ही ऐसा है कि इसका भी संग करना और उसका भी करना (ऐसे) दो बात तो नहीं चले। एक तरफका ही उपदेश है, दूसरी ओर का निषेध है। वहाँ एक तरफके उपदेशका अनुसरण मैं करता हूँ लेकिन दूसरी तरफसे निषेधका अनुसरण नहीं करता हूँ तो वास्तवमें सहीका अनुसरण भी नहीं कर रहा–यह फलित होता है। सत्शास्त्र पढ़ता हूँ और जो सत्शास्त्र नहीं है इसके प्रति भी मेरा भाव रहता है कि इसमें भी अच्छी–अच्छी कुछ बातें की हैं, कोई पाप करनेकी बात नहीं की–ऐसे नहीं देख सकते। (सन्मार्गमें) ज्यों–ज्यों आगे बढ़े त्यों–त्यों जिम्मेदारी बढ़ती ही है। जितना ऊँचे जायेंगे जिम्मेदारी बढ़ती है। इसीलिये तो व्यवहारका प्रतिपादन है। बाह्याचरणकी मर्यादाका प्रतिपादन है। इसमें च्युत हुआ कि जिम्मेदारीसे चूका ऐसा है। इसीलिये 'कुंदकुंदाचार्य'ने मुनिके विषयमें बहुत कड़क लिखा है कि द्रव्यलिंगीका संग मत करना। गृहस्थी अपना लेना किंतु द्रव्यलिंगीका संग मत करना क्योंकि (चारित्रसे) च्युत हुआ तो इतना नुकसान नहीं होगा परंतु द्रव्यलिंगीका संग तो (सम्यक्दर्शनसे–श्रद्धासे) च्युत होनेका कारण बन जायेगा। द्रव्यलिंगी भावलिंगी जैसे ही दिखते हैं। आम आदमीको तो पहचानना मुश्किल पड़े। भावलिंगीमुनिको पहचाननेका सवाल नहीं है वे तो पहचान लेते हैं कि यह (द्रव्यलिंगी) भीतरसे खाली है। इसका केवल बाह्याचरण है इसको अंतर अनुभव नहीं है। अनुभवकी शांति कोई अलग चीज़ है। यह तो मनकी शांतिका प्रकार है। तुरंत पता चल जाता है। वह यदि संग करने आये और उपदेश ले जाये तो दूसरी बात है। भावलिंगी उसके संगका विकल्प नहीं करता, उसकी प्रीति नहीं करता ऐसे भाव नहीं करता कि मैं इसके संगमें रहूँ। लेकिन अगर खुदकी सेवा करता हो तो? द्रव्यलिंगी मुनि अगर भावलिंगी मुनिकी सेवा करता हो तो? फिर यदि ऐसा लगे कि भले ही साथमें रहे सेवा तो मेरी करते हैं! अरे! च्युत हो जायेगा तू। च्युत ही हो जायेगा।

मिथ्यादृष्टि हो जायेगा। च्युत हो जायेगा मतलब सिर्फ चारित्रसे च्युत होगा ऐसे नहीं मिथ्यादृष्टि हो जायेगा। बहुत बड़ा नुकसान हो जायेगा। इतना (गंभीर) विषय है। क्योंकि अपेक्षाबुद्धि हो गई न! अपेक्षाबुद्धि हुई की समझो वह गया।

मुमुक्षुः- ज्ञानीका संग मिले (थोड़ा समय) फिर तो मुमुक्षुका ही संग रहेगा न?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, विशेष तो मुमुक्षुका ही रहेगा। वह तो पर्यायका अंतर है लेकिन ज्ञानीका संग तो मर्यादित ही रहेगा। 'गुरुदेवश्री' थे तो मर्यादित समय मिले। उनके कमरेमें जाओ तो कितना संग मिल सके? कुछ मिनटोंका ही सवाल है, घण्टोंका सवाल नहीं है कि, दो घण्टे, चार घण्टे आप आराम से रह गये! - ऐसा तो क्वचित ही होगा। हालाँकि कम समय है किन्तु उसका मूल्य बहुत है। कम है इसलिये इसकी कीमत कम है ऐसा नहीं है। कम समय है किन्तु बहुत मूल्यवान है। फिर उस संगमें हुई बातें, उसमें खुदने आत्मलक्ष्य पूर्वक जो रस लिया हो, उस रसको बढ़ाना, उस रसको प्रगाढ़ करना यह खुदके ऊपर है। अर्थात् उसका मूल्य बहुत है।

जैसे तेज़ दवाईकी मात्रा हमेशा कम होती है। हीरेकी भस्मको कोई सुदर्शन घनवटीकी मात्रामें हथेलीमें नहीं ली जाती। जैसे दूसरी सामान्य हींग और हरितकीको ले लो हाथमें एकसाथ मिलाकर तो पेट साफ़ हो जायेगा। ऐसे हीरेकी भस्मको नहीं ले सकते। उसकी मात्रा भले ही कम हो परंतु फल बहुत बड़ा है। भले ही समयकी मात्रा कम हो, रस कितना विशेषरूपसे लेना यह अपने परिणाम पर आधारित है, अपनी योग्यताका विषय है।

ये 'सोगानीजी'का दृष्टांत ले लो। आमने-सामने एक दूसरा दृष्टांत ले कि संगका भाव बहुत है। उनके पत्रोंसे यह स्पष्ट होता है कि 'गुरुदेव'के सत्संगका भाव बहुत है। लेकिन पुण्ययोग तथारूप लेकर नहीं आये थे। पात्रता और दशा तो बहुत ऊँची ले ली परंतु पुण्ययोग लेकर नहीं आये थे। ये संयोगकी विचित्रता है! परंतु वास्तवमें संगमें ही थे। संगका भाव हो वह संगमें है। अतः बाह्यमें संग मिले उसे ही संग माने ऐसा हकीकतमें नहीं है। उनकी जो बात चलती है, उनका जो विषय चलता है उसमें खुदका चित्त लगा रहना, चित्त चोंट जाना और उसके निमित्तसे संगमें रहना हो तो अच्छा ऐसा भाव रहा करे; फिर रहना न हो वह तो बाह्य परिस्थितिकी सानुकूलताकी बात है। वह अपने या किसी और के अधिकारका विषय नहीं है। किसी भी जीवके अधिकारका विषय नहीं है।

मुमुक्षुः- वैसे तो हरएक मुमुक्षु चाहता है कि ज्ञानीका संग रहे, चाहे हिन्दुस्तानमें कहीं भी हो, ऐसी इच्छा, भावना तो होती ही है।

पूज्य भाईश्री :- इच्छा तो हो किन्तु देखिये! इनकी भावना और सामान्य भावनाके बीच अंतर दिखता है कि नहीं? इनके पत्रोंका जब स्वाध्याय करते हैं तो इनकी भावना और दूसरे मुमुक्षु जो मुम्बई, कोलकातामें रहते हैं, कोई मद्रास, बेंगलूरु, हैद्राबाद इत्यादि विभिन्न दूरवर्ती क्षेत्रमें जो रहते हों। जिनको भी भावना रहती है कि ज्ञानीके संगमें रहने मिले तो अच्छा। परंतु भावना-भावनामें

कितना फ़र्क दिखता है!! वैसी भावना। उसको भावना कहते हैं। सामान्य ऊपर–ऊपरकी भावना तो जीवको अनंतबार हुई है। भीतरकी जो भावना होती है उसका पूरा प्रकार ही अलग होता है। ऐसी भावना होनेपर या तो सत्संग मिले या नहीं मिले तो इसकी भावना रहेगी बस!

मुमुक्षु :– लक्ष्यमें फ़र्क है।

पूज्य भाईश्री :– पूरा परिणमन ही अलग है। लक्ष्यमें भी अंतर है और परिणमनमें भी अंतर है। योग्यतामें ही फ़र्क है। वह योग्यतानुसार भाव आते हैं। ऐसे भाव किसी कृत्रिमतासे लाये जा सकें ऐसी वस्तुस्थिति, परिस्थिति नहीं है। अर्थात् विषय पूरा परिणाम पर जाता है। बाह्य योग तो पूर्व पुण्यके अनुसार होता है। इसपरसे कोई नाप नहीं आ सकता। कोई क्षेत्रसे नज़दीक रहता हो इसलिये ज़्यादा सत्संगमें रहकर ज़्यादा फ़ायदा कर ले ऐसे गणितका यह विषय नहीं। ऐसा गणित इसमें काम नहीं लगता, इसमें नहीं होता। यह वस्तुकी वास्तविकता भी नहीं है। सारा आधार भाव पर ही है। फिर भावनाके साथ पुण्य साथ देता है तो विशेष सत्संग रहता है और यदि पुण्य साथ न दे तो संग नहीं रहता! परंतु भावनाको दबा नहीं सकते उनकी भावनाको दबा नहीं सकते। ऐसा प्रकार है।

जैसे लौकिकसंग तेरा पुरुषार्थ मंद होनेका कारण है वैसे *'विशेष गुणीका संग तेरे चैतन्यतत्त्वको निहारनेकी परिणतिमें विशेष वृद्धिका कारण होगा।'* कितनी बात ली है! सुलटा पहलू है। दोनोंमें इतना भरा है। तेरा पुरुषार्थ मंद हो जायेगा और तेरे ज्ञानको भी आवरण आयेगा। लौकिक संगमें पुरुषार्थ मंद होगा, वीर्यगुणके परिणामकी बात की। ज्ञानकी बात करे तो तेरे ज्ञानमें मूढ़ता आयेगी। मूढ़ता क्या काम करती है? कि निज चैतन्यको देखनेकी दिशामें अंधत्व आता है। जिसे यहाँ मूढ़ता कहते हैं। यहाँ सुलटे पहलूकी बात स्पष्ट होती है।

विशेषगुणीके संगसे तुझे जो अपने चैतन्यतत्त्वकी परिणति जो तुझे उत्पन्न करनी है उस दिशामें तेरा काम होगा। तेरा ज्ञान खुल जायेगा तेरा त्याग करनेका उत्साह बढ़ जायेगा, दृढ़ता आ जायेगी ऐसा नहीं कहा। तुझे जो अपने चैतन्यतत्त्वको देखना है, निरावरण चैतन्य परमात्मा जो भीतरमें खुद ही है उसे देखनेका कार्य नहीं हो रहा है। विद्यमान होनेपर भी जीव उसे देख नहीं पा रहा है। वैसे देखें तो बात तो इतनी लंबी है नहीं क्योंकि चैतन्यप्रभु भीतरमें मौजूद हैं–हयात हैं–विद्यमान हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय होनेके कारण ज्ञानकी इतनी क्षमता भी है फिर भी क्यों देख नहीं पा रहा? क्योंकि उस ओर जो जीवको सन्मुख होना है, वह सन्मुख होनेकी अशक्ति है। सन्मुख होनेके लिये जो शक्ति चाहिये उस शक्तिको जीवने विकसित नहीं की है। उसे विकसित करनेके लिये सत्संग उसमें निमित्तभूत होगा – ऐसा कहना चाहते हैं। वरना मुमुक्षु जीव कहेगा कि, ठीक है बात बराबर है, आत्माके दर्शन करने योग्य है, और इसके लिये आत्माके आत्मसन्मुख होना चाहिये यह भी बात ठीक है–परंतु हुआ नहीं जाता है, नहीं हुआ जाता है। वस्तु मौजूद है और जाननेवाली ज्ञानकी पर्याय भी मौजूद है, कमी किसकी है? क्या कमी है? इसमें कमी क्या रह जाती है? बीचमें जो अंतराय है वह किस चीज़का है? इसकी जाँच

कितनी की हमने? इसके लिये कितनी दरकार है? इस विषयकी गहराईमें जानेका प्रयत्न किया है क्या? यह सवाल है।

जीवको बाह्यसाधनमें उसकी वहाँकी रुचिको उस दिशामें आगे बढ़नेकी दिशामें यहाँ मार्गदर्शन ऐसा दिया है कि तू अगर विशेषगुणीके संगमें जायेगा, तेरे चैतन्यतत्त्वको तुझे भीतरमें देखना हो, ऐसी परिणति साधनेका, ऐसी परिणति उत्पन्न होनेका, अगर ऐसी परिणति होगी तो इसकी विशेषवृद्धिमें वह कारण होगा। सब बातें इसमें ले लेना। नहीं होगी तो उत्पत्तिका कारण होगा, होगी तो बलवान होनेमें कारण बनेगा। परंतु अवगुणीका संग या भूलचूकसे भी कुसंगमें मत जाना, वह भयंकर सर्पका बिल जैसा है। वहाँ जाने जैसा नहीं है।

* (प्रवचनका शेष अंश आगेके अंकमें...)

(पृष्ठ संख्या १४से आगे...)

वास्तव में वह स्वयं को जाने तो यह भिन्न है ऐसा जानता है। लेकिन वह ऐसा कहे कि राग को हेय जाना और ज्ञान को उपादेय जाना और शुद्धात्मा जानने में नहीं आता, ऐसा नहीं बनता। (यदि ऐसा है) तो उसने वास्तव में जाना ही नहीं है। वास्तविक जाना उसे कहे कि ज्ञायक ज्ञायकरूप प्रगट हो और भिन्न पड़े तो निश्चयसे उसने राग को हेय जाना और ज्ञान को उपादेय जाना। ऊपर-ऊपरसे जाना है, निश्चयसे अन्दरसे नहीं जाना है।

मुमुक्षु :- माताजी! राग और ज्ञान भिन्न है, इतना जाने तो पर्याप्त है? या द्रव्य और ज्ञान की पर्याय का भी भेदज्ञान करना पड़े?

समाधान :- राग और ज्ञान भिन्न है, वह जिसप्रकार भिन्न है.. क्योंकि वह तो अपना स्वभाव ही नहीं है, विभाव है और यह ज्ञायक स्वयं का स्वभाव है। उसमें पर्याय है वह पर्याय का, वह पर्याय कोई अपेक्षासे उसकी है। कथंचित् भिन्न है, कथंचित् अभिन्न है। इसलिये उसका स्वरूप जैसा है वैसा जानना।

*

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (जुलाई-२०२६, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि
स्व. स्वाति जैनके स्मरणार्थ,
हस्ते श्रीमती बेलाबहिन जैन, भावनगर
की ओरसे ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकोंको आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

परम पूज्य श्री सौभाग्यभाईके देहविलय पश्चात परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी द्वारा लिखित गुणानुवाद सभर पत्र

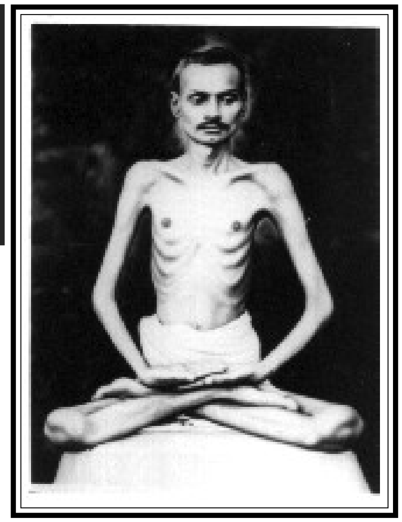

पत्रांक ७८३

बंबई, आषाढ़ सुदी ४, रवि, १९५३

श्री सोभागको नमस्कार

श्री सोभागकी मुमुक्षुदशा तथा ज्ञानीके मार्गके प्रति उनका अद्भुत निश्चय वारंवार स्मृतिमें आया करता है।

सर्व जीव सुखकी इच्छा करते हैं, परंतु कोई विरले पुरुष उस सुखके यथार्थ स्वरूपको जानते हैं।

जन्म, मरण आदि अनंत दुःखोंके आत्यंतिक (सर्वथा) क्षय होनेके उपायको जीव अनादिकालसे नहीं जानता, उस उपायको जानने और करनेकी सच्ची इच्छा उत्पन्न होनेपर जीव यदि सत्पुरुषके समागमका लाभ प्राप्त करे तो वह उस उपायको जान सकता है, और उस उपायकी उपासना करके सर्व दुःखसे मुक्त हो जाता है।

ऐसी सच्ची इच्छा भी प्रायः जीवको सत्पुरुषके समागमसे ही प्राप्त होती है। ऐसा समागम, उस समागमकी पहचान, प्रदर्शित मार्गकी प्रतीति और उसी तरह चलनेकी प्रवृत्ति जीवको परम दुर्लभ है।

मनुष्यता, ज्ञानीके वचनोंका श्रवण प्राप्त होना, उसकी प्रतीति होना, और उनके कहे हुए मार्गमें प्रवृत्ति होना परम दुर्लभ है, ऐसा श्री वर्धमानस्वामीने उत्तराध्ययनके तीसरे अध्ययनमें उपदेश किया है।

प्रत्यक्ष सत्पुरुषका समागम और उनके आश्रयमें विचरनेवाले मुमुक्षुओंको मोक्षसंबंधी सभी साधन प्रायः अल्प प्रयाससे और अल्पकालमें सिद्ध हो जाते हैं; परंतु उस समागमका योग मिलना बहुत दुर्लभ है। उसी समागमके योगमें मुमुक्षुजीवका चित्त निरंतर रहता है।

जीवको सत्पुरुषका योग मिलना तो सर्व कालमें दुर्लभ है। उसमें भी ऐसे दुःषमकालमें तो वह योग क्वचित् ही मिलता है। विरले ही सत्पुरुष विचरते हैं। उस समागमका लाभ अपूर्व है, यों समझकर जीवको मोक्षमार्गकी प्रतीति कर, उस मार्गका निरंतर आराधन करना योग्य है।

जब उस समागमका योग न हो तब आरंभ-परिग्रहकी ओरसे वृत्तिको हटाकर सत्शास्त्रका परिचय विशेषतः कर्तव्य है। व्यावहारिक कार्योंकी प्रवृत्ति करनी पड़ती हो तो भी जो जीव उसमें वृत्तिको मंद करनेकी इच्छा करता है वह जीव उसे मंद कर सकता है और सत्शास्त्रके परिचयके लिये बहुत अवकाश प्राप्त कर सकता है।

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १३ पर..)

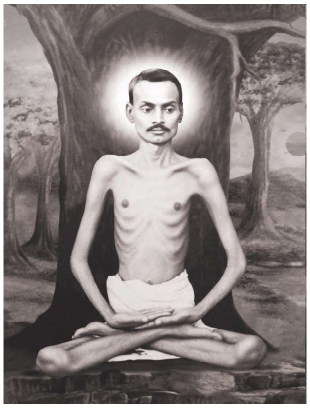

यह चेतन और यह देह इस प्रकार आपकी कृपादृष्टिसे सहज हो गया है।

– आज्ञांकित सेवक सोभाग लल्लुभाई

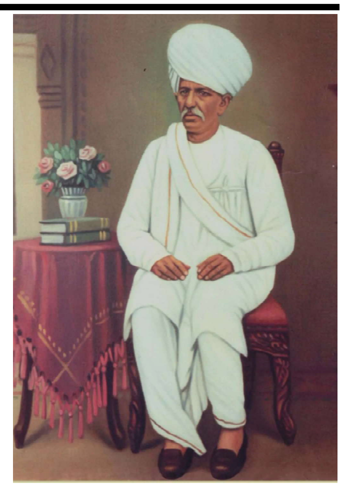

(परम कृपालुदेवके प्रत्यक्ष योगमें पू. श्री सौभाग्यभाईके आत्मा ऊपर जो उपकार हुआ वह उनके ही शब्दोंमें निम्न पत्रमें प्रसिध्द हुआ है।)

सायला – जेठ शुक्ल – १४, रवि – १९५३

परम पुरुष, तरणतारण, परमात्मदेव, कृपानाथ, बोधस्वरूप, देवाधिदेव, महाप्रभुजी, सहजात्म स्वरूप स्वामीकी सेवामें। बंबई ।

श्री सायलासे लि. आपका आज्ञांकित सेवक पामरमें पामर सोभाग लल्लुभाईके नमस्कार पढ़ना।.....

“.....देह और आत्मा भिन्न हैं। देह जड है। आत्मा चैतन्य है। उस चेतनका भाग प्रत्यक्ष तौर से भिन्न समझमें नहीं आता था। लेकिन ८ दिनसे आपकी कृपासे अनुभवगोचरसे दो टूक प्रगट भिन्न दिखाई देता है और रात–दिन यह चेतन और यह देह इस प्रकार आपकी कृपादृष्टिसे सहज हो गया है। यह आपको सहज जानने हेतु लिखा है.....”

*

(पृष्ठ संख्या १२से आगे...)

आरंभ–परिग्रहसे जिनकी वृत्ति खिन्न हो गई है, अर्थात् उसे असार समझकर जो जीव उससे पीछे हट गये हैं, उन जीवोंको सत्पुरुषोंका समागम और सत्शास्त्रका श्रवण विशेषतः हितकारी होता है। जिस जीवकी आरंभ–परिग्रहमें विशेष वृत्ति रहती हो, उस जीवमें सत्पुरुषके वचनोंका अथवा सत्शास्त्रका परिणमन होना कठिन है।

आरंभ परिग्रहमें वृत्तिको मंद करना और सत्शास्त्रके परिचयमें रुचि करना प्रथम तो कठिन पड़ता है, क्योंकि जीवका अनादि प्रकृतिभाव उससे भिन्न है, तो भी जिसने वैसा करनेका निश्चय कर लिया है वह वैसा कर सका है; इसलिये विशेष उत्साह रखकर वह प्रवृत्ति कर्तव्य है।

सब मुमुक्षुओंको इस बातका निश्चय और नित्य नियम करना योग्य है, प्रमाद और अनियमितता दूर करना योग्य है।

*

एक ज्ञायकको जान !

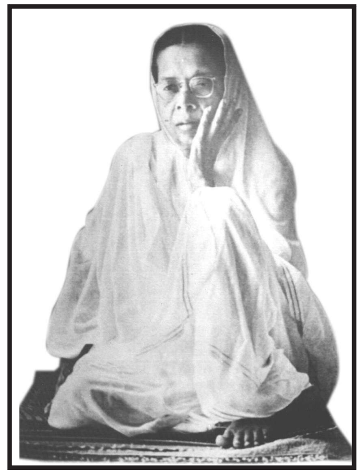

तत्त्वचर्चा मंगलवाणी-सीडी -१५ -C

- प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन

लेकिन ऐसा कहे कि राग और ज्ञान को भिन्न-भिन्न किये परन्तु शुद्धात्मा जानने में नहीं आता, ऐसा नहीं बनता। ज्ञायक को पहचाने तो उस ज्ञायक के अन्दर शुद्धता आ जाती है, उसमें सब आ जाता है। मैं अनन्त गुणोंसे भरा एक शुद्धात्मा (हूँ)। मेरे में कोई विभाव नहीं हुआ है। अशुद्ध पर्याय जो है वह परिणति-पर्याय में है, मेरा द्रव्य तो शुद्ध है। इसप्रकार शुद्धता भी साथ आ जाती है, उसमें ज्ञायकता भी साथ आ जाती है। ज्ञान-दर्शनसे भरा मैं पूर्ण हूँ। कोई पदार्थ के साथ मुझे सम्बन्ध नहीं है। वह सब पदार्थ, वह सब परद्रव्य, उनसे मैं भिन्न हूँ। इसप्रकार भिन्नता का ख्याल आये, ज्ञायकता का ख्याल आये, शुद्धता का ख्याल आये। मैं एक शुद्धात्मा हूँ, सब ख्याल में आ जाता है।

स्वयं राग को हेय जाने और ज्ञान को उपादेय जाने, तो वह खुद निर्णय करे उसमें सब आ जाता है। उसे भिन्न-भिन्न जानना नहीं पड़ता। ज्ञायक को जाने उसमें शुद्धात्मा ज्ञात होता है, उसमें नित्य किसप्रकार? उसमें अनित्य किसप्रकार? उसमें सब आ जाता है। एक किसप्रकार? अनेक किसप्रकार? सब आ जाता है। मैं मेरे द्रव्य स्वभावसे एक हूँ। गुणों में अनेकता, पर्याय में अनेकता आदि सब उसके लक्ष्य में आ जाता है। एक ज्ञायक को पहचाने तो। राग हेय है, मेरा स्वरूप नहीं है। यह ज्ञायक ही उपादेय है। ऐसा निर्णय करे उसे प्रयत्न हुए बिना रहता नहीं। आता है न?

बन्धो तणो जाणी स्वभाव, स्वभाव जाणी आत्मनो। आत्मा का स्वभाव जाने, बन्ध का स्वभाव जाने। लेकिन बन्धसे जो विरक्त हो गया, फिर वह अंतरसे भिन्न हो जाता है कि ये विभाव मैं नहीं हूँ, मैं तो ज्ञायक हूँ। तो उसकी मुक्ति होती है। अंतरसे मुक्ति की पर्याय प्रगट होती है। ज्ञान को उपादेय जाने और राग को हेय जाने तो शुद्धात्मा ज्ञान में आये बिना रहता ही नहीं। तो मुक्ति का पंथ उसे प्रगट हो ही जाता है।

मुमुक्षु :- उसका अर्थ यह हुआ कि राग को भिन्न जाना ही नहीं।

समाधान :- हाँ, राग को भिन्न जाना ही नहीं। जो जाने वह तो सब जाने। राग को भिन्न जाने तो ज्ञान को भिन्न जाने बिना रहता ही नहीं। ये अशुद्धता मेरा स्वरूप नहीं है तो शुद्धता क्या है, वह उसे ख्याल में आये बिना रहता ही नहीं। एक अपने अस्तित्व को जाने तो यह मेरा नहीं है, ऐसा जाना। तो

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या ११ पर..)

‘दृष्टिका परिणमन और दृष्टिका विषय’

– ‘द्रव्यदृष्टि प्रकाश’ – पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी

प्रश्न :– आप शुद्ध पर्यायको दृष्टिकी अपेक्षासे भिन्न कहते हैं या ज्ञानकी अपेक्षासे?

उत्तर :– दृष्टिकी अपेक्षासे भिन्न कहते हैं; ज्ञानकी अपेक्षासे नहीं। दृष्टि करनेके प्रयोजनमें भिन्नताका ज़ोर दिये बिना दृष्टि अभेद नहीं होती; इसलिये दृष्टिकी अपेक्षासे ही भिन्न कहते हैं। और अपनी तो यही ‘दृष्टिप्रधान’ शैली है, सो ऐसे ही कहते हैं। २

*

सिद्ध (पर्याय)से भी मैं अधिक हूँ; क्योंकि सिद्ध (दशा) तो एक समयकी पर्याय है; और मैं तो ऐसी-ऐसी अनंत पर्यायोंका पिण्ड हूँ। ७.

*

जैसे मेरुपर्वत अडिग है; ‘मैं’ भी (स्वभावसे) वैसे ही अडिग हूँ। मेरुमें तो परमाणु आते-जाते हैं; लेकिन मेरेमें तो कुछ भी आता-जाता नहीं – ऐसा ‘मैं’ अडिग हूँ। ८.

*

‘मैं वर्तमानमें ही मुक्त हूँ, आनंदकी मूर्ति हूँ, आनंदसे भरचक समुद्र ही हूँ’ – ऐसी दृष्टि हो, तो फिर मोक्षसे भी प्रयोजन नहीं; मोक्ष हो तो हो, न हो तो भी क्या? (पर्यायकी इतनी गौणता द्रव्यदृष्टिमें हो जाती है।)

मेरेको तो वर्तमानमें ही आनंद आ रहा है फिर पर्यायमें तो मोक्ष होगा ही! (– ऐसी प्रतीति आ जाती है।) **लेकिन मेरेको तो उससे भी प्रयोजन** (दृष्टि) **नहीं। ९.**

*

द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षासे तो शुद्धपर्याय भी परद्रव्य है। जब मेरे अस्तित्वमें वो (शुद्धपर्याय) **नहीं तो फिर रागकी तो बात ही क्या?** (द्रव्यदृष्टिकी अपेक्षा अर्थात् द्रव्यस्वभावमें अहंभावरूप श्रद्धाका परिणमन होना। ऐसी श्रद्धा होनेपर ही पर्याय शुद्ध होती है परंतु श्रद्धा उसमें अहंभाव नहीं करती।) **११.**

*

पर्यायमें तीव्र अशुभपरिणाम हो या उत्कृष्टसे उत्कृष्ट शुद्धपर्याय हो ‘मेरे’में (एकरूप द्रव्यस्वभावमें) **कुछ भी बिगाड़-सुधार नहीं होता, ‘मैं’ तो वैसा का वैसा ही हूँ। १२.**

अद्‌भुत योग्यताके धनी सौभाग्यमूर्ति सोभागभाई !!

सौभाग्यमूर्ति सौभाग्यभाईके प्रति भक्तिपूर्ण हृदयोद्‌गार !!

– सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

(देखिये!) कृपालुदेवकी आत्मा खिल जाती थी। उनके आत्मभाव आविर्भूत होने लगते थे, तो (सोभागभाईकी) उनकी योग्यता कैसी होगी?! जिनके संगसे जिनके वचनोंसे, जिनके पत्र पढ़नेसे ज्ञानीका आत्मा प्रसन्न हो जाये तो सामनेवाले जीवकी योग्यताको कैसी माने! ऐसी योग्यताके धनी थे सौभाग्यभाई! यानि असलमें वे सौभाग्यमूर्ति ही सौभाग्यभाई थे। लिखा है न! आगेवाले पत्रमें सौभाग्यमूर्ति सौभाग्यभाई! ऐसा लिखा है।

मुमुक्षु :– जैसा नाम वैसे गुण!

पूज्य भाईश्री :– यथा नामा तथा गुणा! (लिखते है कि) प्रसन्न होते हैं – इतना ही नहीं परंतु परम प्रसन्नता होती है और पुनः पुनः सत्‌युगका स्मरण आ जाता है। वह ऐसे कि आप जैसे मुमुक्षु तो सत्‌युगमें हो सकते हैं, इस कलयुगमें नहीं हो सकते। कैसे होगा बताईये! अभी तो केवल तीन महिनेका परिचय है, भादों महिनेमें तो परिचयमें आये हैं, मार्गशीर्ष महिना चल रहा है। ऐसे थे! सत्‌युगका स्मरण कराये ऐसे थे। सोभागभाई कैसे थे? सत्‌युगका स्मरण करानेवाले थे। देखो न! आगे जाकर ३०वें वर्षमें आत्मसिद्धि लिखी, १४२ कडियाँ!! जो कि सौभाग्यभाईको लक्ष्यमें रखकर

लिखी हैं। भीतरमें से धारा छूटी। १४२ कडियाँ लिख डाली। और तो और शेष बात ७५१वाँ पत्र लिखा। इसके आगे सौभाग्यभाईने प्रश्न लिखा कि अनेक प्रकारके समकितकी बात लिखते हैं तो इसे स्पष्ट तो कीजिये। तो उत्तर दिया कि इसप्रकार है। तीन प्रकारके समकित हैं! हमारे ज्ञानमें तीन प्रकारके समकित हैं। ये सब बातें शास्त्रोंमें खोजने पर भी न मिले ऐसी बातें उन्होंने कृपालुदेवके पेटसे (हृदयसे) निकलवायी हैं।

(श्रीमद्‌ राजचंद्र प्रवचन नं-६८४, २१.४५ मिनट पर)

*

(पत्रांक-२०१के अन्तमें श्रीमद्‌जी लिखते हैं कि) 'विनित आज्ञांकितके दंडवत।' ठीक! ऐसे भक्तकी भक्ति उन्होंने की है। भक्तकी भक्ति ऐसी की है। और इतनी अधिक सोभागभाईकी भक्ति करनेके

बावजूद भी मतलब topmost response जिसे कह सकते हैं, इतना अधिक response देने पर भी सोभागभाईको एक अंश भी मान नहीं चढ़ा है, वरना तो अहंकारसे प्याला फट जाये। गुरु चलाकरके शिष्यकी भक्ति करे तब उसे हज़म करना बहुत मुश्किल है। ऐसा response जितना highly response गिना जाता है इतना ही वह हज़म करनेके लिये heavy dose भी है। जैसे वह सालमपाक हज़म करना मुश्किल होता है न! वैसे सालमपाक तो अभी नहीं बनता है, अब तो सब बदल चुका है। अनेकों औषधियोंको डालकर ठण्डके दिनोंमें एक पाक बनाया जाता है (कि जिसमें) घी बहुत डाला रहता है उसमें घी पी ले ऐसी औषधियाँ भी होती हैं कि जिससे शरीर शक्तिसे स्वास्थ्य मज़बूत होता है, एक सर्दीमें खाया हुआ साल भर ताकत देता है। फिर दूसरे सर्दीके मौसममें फिरसे खाने को मिले क्योंकि सर्दीके मौसम बिना वह पचे नहीं। गर्मीके मौसममें खाये तो शरीरमें गर्मी निकल पड़े ऐसी गरम औषधियाँ उसमें डाली रहती हैं। वह जैसे हज़म करना मुश्किल पड़ता है वैसे response हज़म करना भी बहुत मुश्किल है। सौभागभाई तो महापात्र थे। चाहे कितना भी, इतनी हद तक response दिया कि आपकी चरणरज हैं, आपकी कृपादृष्टिकी चाहना है। जबकि वे तो अभी शुरुआती कदम रख रहे थे। जब यह पत्र लिखते हैं तब परिचय हुआ छः महीने भी नहीं हुए थे। छः महीने हो गये (क्यों) पिछले भादोंमें परिचयमें आये थे। २३वें वर्षमें। यह कागज़ माघ महीनेमें लिख रहे हैं। ऐसे योग्यतावान थे!! (श्रीमद् राजचंद्र प्रवचन नं–७०६, २४.०० मिनट पर)

*

....सोभागभाईकी उम्र जब वे कृपालुदेवके परिचयमें आये तब ६७ सालकी थी और ७३ सालकी आयुमें उन्होंने देहत्याग किया है। इसका मतलब ६–७ सालका संयोग रहा है दोनोंके बीच। वे देहांतके १७ दिन पहले आत्मज्ञानको प्राप्त हुए हैं। उनके लिखे हुए एक पत्र परसे, वह इनका आखिरका पत्र है कि आत्माका ज्ञान हुआ है जो कि कृपालुदेवके निमित्तसे हुआ है। उनको ईडर ले गये थे, बादमें ईडरसे आनेके पश्चात् आत्मज्ञान हुआ है। ईडरमें उन्हें जो गुप्त मंत्र, गुप्त भेद जो बतलाना था, जो मंत्र बताना था वह बीजज्ञानका मंत्र उनको बता दिया। कि जिसको लेकर वे सर्वप्रथम आये थे कृपालुदेवके पास। सर्वप्रथम इसी विषयको लेकर उनका संयोग हुआ था। और इसी विषयके साथ अंतमें वियोग हुआ है। देखो! उनके जीवनका घटनाक्रम देखो! उसी बीजज्ञान विषयक मंत्रको समझाईये कि इसमें क्या है! तब कहा समझायेंगे आपको और अंतमें वह समझाया बादमें आत्मज्ञानको प्राप्त हुए हैं। अंतिम मंत्र उन्होंने यही दिया है – बीजज्ञानका! (श्रीमद् राजचंद्र प्रवचन नं–७३३, ३०.०० मिनट पर)

*

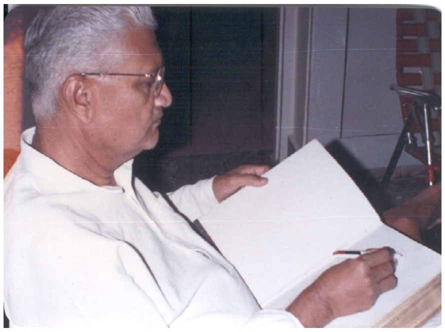

वास्तविकतामें आओ !!

- सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

प्रश्न :– अतीन्द्रिय आनंद और मनके आनन्दमें फ़र्क नहीं समझ आता है।

समाधान :– वास्तवमें तो अतीन्द्रिय आनन्दको देखा कब है कि, इसका फ़र्क समझमें आये। मनके आनन्दको ही वास्तविक आनन्द मान लिया है। इसलिये अतीन्द्रिय आनन्दका दर्शन हमें नहीं होता। वास्तविकता तो ऐसी है। मनका आनन्द वह आनन्दकी कल्पना है जीवकी। जिसे उसने सही आनन्द मान लिया है, कल्पित आनन्दको वास्तविक आनन्द माना है। इसीलिये जीवका तत्संबंधित पुरुषार्थ बंद नहीं हो रहा है। अविरत चलता ही रहता है। और तो और जाँच नहीं करता है कि जहाँसे आनन्द आता है तो वहाँ (स्थिर क्यों नहीं रहा?) रूममें बैठे–बैठे आनन्द है तो फिर बाहर निकलता क्यों है? और अगर बाहर छतमें बैठे हुए आनन्द मिलता हो तो रूममें क्यों जाता है? (वास्तवमें) कहीं भी आनन्द नहीं है। वह जो जगह बदलता रहता है मतलब कि उसको वहाँ आनन्द नहीं आता। वहाँसे ऊब गया तो बाहर आया। बाहर आया, बाहरसे ऊब गया कि अन्दर गया। कोई आनन्दका प्रयत्न नहीं है। दो में से एक भी आनन्दका प्रयत्न नहीं है। अतः अंतर्मुख होकर जहाँ आनन्द है वहाँसे आनन्दकी प्राप्तिका प्रयत्न नहीं होगा तबतक कहींसे आनन्दकी प्राप्तिकी आशा रखना व्यर्थ है।

जहाँ जिस चीज़की मौजूदगी नहीं है, जैसे यह गद्दीमें आनन्द नहीं है तो चाहे कितनी भी देर उसपर बैठा रहे, क्या आनन्द मिलेगा? किसी भी बाहरके क्षेत्रमें आनन्द नहीं है, कोई मकान, महलमें आनन्द नहीं है किसी भी प्रकार के खान–पीनमें आनन्द नहीं है। सबसे पहले यह निश्चय तो करें, जाँच करके निश्चय तो करें। जब भी हमें विकल्प उठे, विकल्पपूर्वक क्रिया करे कि मुझे यहाँ बैठनेमें ठीक है, अभी सोना नहीं सुहाता। फिर बैठे–बैठे थकान लगती है कि कहेगा सोनेमें सुख है, तनिक लेट जाता हूँ तो यह असुख मिटे। जो असुख लगता है वह असुख मिटे लेकिन निश्चय तो कर कि इसमें सुख कहाँ है? जाँच तो करें। बिना जाँच किये यूँ ही लेट जाये, झुक जाये तो इससे कोई आनन्द नहीं मिलेगा, वहाँसे पुनः घूमना होगा। और कोई रास्ता नहीं है। अर्थात् यह तो वास्तविकतामें आनेका विषय है। कल्पना कर–करके बहुत भटका। चारों गतियोंमें चौरासी लाख योनियोंमें जन्म–मरणका कारण है यह कल्पना और कुछ नहीं। जीवकी खुदकी कल्पनासे भ्रमणा है। वह मिथ्याज्ञान और मिथ्यादर्शन है। और इसीको लेकर परिभ्रमण है। परिभ्रमणके मूलको खोजकर उसे मिटाना होगा, इसके अलावा कोई उपाय नहीं है।

(प्रवचनांश...'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल क्र.–२३०, दि.२८–११–८७, प्रवचन क्र.–१८५, 'अध्यात्म सुधा' (गुजराती) भाग–७, पन्ना क्र. – २०६,२०७)

'स्वानुभूतिप्रकाश' पत्रिका सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचना

जयजिनेन्द्र! इससे यह सूचित किया जाता है कि 'स्वानुभूतिप्रकाश' आध्यात्मिक मासिक पत्रिका हिन्दी/गुजरातीमें पिछले २८ सालसे आपके स्वाध्याय हेतु भेजी जा रही है। अब इसे काफ़ी समय होनेसे कई पते बदल चुके हो या पत्रिकाका सदुपयोग न होकर किसी भी प्रकारकी असातना होनेकी संभवितताको देखते हुए यह पत्रिकाको आगे प्राप्त करनेके इच्छुक सभी मुमुक्षुओंको पुनः अनिवार्यरूपसे अपने पतेका **registration** करवाना होगा – ऐसा ट्रस्ट द्वारा नक्की किया गया है।

इसके तहत आगामी अक्टूबर–२०२६ तककी समयसीमामें अपने पतेकी पूरी जानकारी नीचे दिये गये फॉर्ममें लिखकर इसकी फ़ोटो हमारे **whats app** नं. ९४०८३०३१५२ पर भेजना होगा। नवम्बर–२०२६ से केवल पुनः **registered** पते पर यह पत्रिका भेजी जायेगी। जो मुमुक्षु अपना **registration** नहीं करवायेंगे उन्हें इस पत्रिकाकी उपयोगिता एवं आवश्यकता नहीं है यह समझकर उन्हें यह पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। कृपया इस बातको ध्यानमें लेंवे।

आपको हार्ड कॉपी या **pdf file** या दोनों – जिसकी भी आवश्यकता हो उसे बॉक्समें टिक करें।

–प्रबंध ट्रस्टी
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

हार्ड कॉपी ☐ **pdf** फ़ाइल ☐

वर्तमान रजिस्टर्ड नं. :- ________________

नाम :- ____

पता :- ____

____

पिनकोडः– ____

मोबाइल नं :- ______________________

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 70640/97
Title Code : GUJHIN00241
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

‘सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे’

... दर्शनीय स्थल...

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री नीरव धर्मेन्द्र वोरा द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर एस्टेट, बारडोलपुरा, अहमदाबाद - ३८० ०१६ से मुद्रित एवं १९४२ - बी, शशीप्रभु मार्ग, रूपाणी, भावनगर - ३६४ ००१ से प्रकाशित ।

संपादक : श्री नीरव धर्मेन्द्र वोरा - 98250 52913

Printed Edition : **3460**
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...

Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur process 9374825041